# देवार्चन और स्नात्रपूजा

मुनिराजश्री नरेन्द्रविजयजी के शिष्य
**मुनिश्रीजिनेन्द्र विजयजी 'जलज'...**

अनादि अनन्त विश्व में अनादिकाल से परिभ्रमण करने वाले संसारी जीवों के लिए संसारसागर को तैरकर मोक्ष का शाश्वत सुख प्राप्त करने के लिए सद्धर्म के अनेक प्रशस्त साधन हैं। उनमें सर्वोत्कृष्ट आलम्बन जिनबिम्ब और जिनागम हैं। संसार के प्रत्येक धर्म में प्रभु के दर्शन, वन्दन और पूजन को आत्मा की उन्नति का सर्वोत्कृष्ट निमित्त माना गया है। जगत् में प्रसिद्ध जैन धर्म में भी श्री जिनेश्वरदेव की अनुपम उपासना, सेवा-पूजा को आत्मोन्नति का प्रथम साधन बतलाया गया है। प्राकृतिक नियम के अनुसार विश्व के प्रणियों का विशेष आकर्षण मूर्ति-प्रतिमा की ओर देखा जाता है।

दर्शन-विशुद्धि का महान् आलम्बन जिनमूर्ति-जिनप्रतिमा है। वीतराग परमात्मा के, जिनेश्वरदेव के दर्शन-वन्दन-पूजन से ही आत्मदर्शन होता है। जैसे ज्योति से ज्योति प्रकट होती है, वैसे ही वीतराग परमात्मा के दर्शनादि से आत्मा की पहचान होती है। श्री दौलतरामजी ने कहा भी है कि-

जय परम शान्त मुद्रा समेत।
भवजन को निज अनुभूति हेत।।

कुछ लोग कहते हैं कि पत्थर की मूर्ति अचेतन होने से कुछ भी लाभ नहीं कर सकती, तब तो यह मानना पड़ेगा कि सिनेमा, टी.वी. में जो दृश्य देखते हैं, वे कुछ भी हानि नहीं कर सकते क्योंकि वे भी अचेतन हैं। किन्तु हम देखते हैं कि वे अचेतन द्रव्य भी लोगों को कामी, विषयी, विकारी, खूनी, हिंसक, गुण्डे आदि बना रहे हैं, तब वीतराग प्रभु की मूर्ति भी हमें अकामी, निर्विषयी, निर्विकारी और अहिंसक क्यों नहीं बना सकेगी?

*कहा भी गया है-*

शरीर में जैसे चेतन है,
नौकरी में जैसे वेतन है।
'नवल' सच मानो पत्थर में
मूर्तिमन्त करुणानिकेतन है।।

आप स्वयं अपनी बुद्धि से सोचें। कागज के दो टुकड़े आपके सामने पड़े हैं। एक कोरा है और दूसरे पर सौ रुपए की सरकारी छाप लगी हुई है। अब इन दोनों में से किस कागज की कीमत अधिक है? ऐसे ही कुशल कारीगरों द्वारा निर्मित पत्थर की मूर्ति में आचार्य महाराज द्वारा अंजनशलाका प्राण-प्रतिष्ठा विधि से प्राण प्रतिष्ठित किए जाते हैं तब वह मूर्ति साक्षात् परमात्मा का दिव्य रूप धारण करती है।

धर्म फूल खिले जीवन-बाग हैं।
मेरी श्रद्धा के सुमन वीतराग हैं।।
'नवल' मूर्ति के माध्यम से
साक्षात् प्रभुदर्शन का पराग है।

परमात्मा का स्वरूप निराकार है। वे निराकार होते हुए भी आकार में ही पाए जाते हैं, क्योंकि विश्व में किसी भी प्रकार की निराकार वस्तु भी आकृति से ही उपलब्ध होती है। ऐसे ही निराकार विश्वव्यापक प्रभु परमेश्वर से मिलने के लिए, उनकी मूर्ति का दर्शन-वंदन-पूजन करने के लिए मंदिर में जाना होता है। क्योंकि-

आकृति- आकार बिना निराकार नहीं।
और मूर्ति-प्रतिमा बिना प्रभु परमात्मा नहीं।।

पूजा शब्द पूज् धातु से बना है, जिसका पूजन के अर्थ में प्रयोग होता है। अर्थात् मन से, वचन से और काया से फूल-फल, धूप, दीप, गन्ध, जल, अक्षत, नैवेद्य इत्यादि सामग्री द्वारा इष्टदेव की प्रतिमा का जो विशेष सत्कार कियाजाता है, उसी का नाम पूजा है-

प्रतिमा पूजो प्रेम से, है परमेश्वर रूप।
'नवल' पूजता पूज्य को, जागे परम स्वरूप।।

श्री वीतराग प्रभु की मूर्ति की श्रद्धायुक्त भक्ति-भाव से अष्टप्रकारी आदि पूजा की जाती है, वही जिनमूर्तिपूजा है। विशेष सत्कार करने को ही मूर्तिपूजा कहते हैं। भक्त का तो यही लक्ष्य रहता है कि इन वीतराग प्रभु की मूर्ति द्वारा ही मैं वीतराग प्रभु के



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वास्तविक स्वरूप का वंदन, पूजन, दर्शन, ध्यान तथा चिंतन करूँ। वीतराग प्रभु के प्रति अनुपम आत्मश्रद्धा, स्नेह, प्रेम और भक्ति, सद्धर्म पर दृढ़ श्रद्धा और पूर्ण विश्वास तथा ईश्वत्व के विषय में अस्तित्व बुद्धि रखना ही उनका मुख्य ध्येय रहता है। अतः यह सिद्ध है कि विश्व में सदाचार शान्ति, सुख और समृद्धि का कारण मूर्तिपूजा ही है।

जब परमेश्वर और उनके गुण भी निराकार हैं तो उनको चर्मचक्षु वाले प्राणी कैसे देख सकेंगे? और उनकी उपासना आदि भी कैसे कर सकेंगे? इसलिए चर्मचक्षु वाले को साकार, इन्द्रियगोचर दृश्य वस्तु की ही आवश्यकता रहती है। विश्व में ऐसा सर्वोत्तम साधन शुक्लध्यानावस्थित और प्रशान्त मुद्रा युक्त श्री जिनेश्वर भगवान की मनोहर मूर्तिप्रतिमा से बढ़कर अन्य कोई भी नहीं है। चाहे वह मूर्ति पाषाण की हो, काष्ठ की हो, रत्न की हो, सोने-चाँदी की हो, सर्वधातु की हो, मिट्टी की हो, बालू-रेत की हो, या किसी अन्य पदार्थ की ही क्यों न हो, उपासना का लक्ष्य तो उस मूर्ति द्वारा श्री वीतराग परमात्मा के सच्चे स्वरूप का चिंतन, ध्यान करना ही रहता है-

जिनदर्शन निश-दिन करो, निज-दर्शन के काज।
'नवल' सुगुण सर्जन करो, चढ़ो बढ़ो गुण साज॥

भारत में ही नहीं अन्य देशों में भी मूर्तिपूजा का प्रचार था, ऐसे ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं। चौदहवीं शताब्दी तक जर्मनी आदि में भी मूर्तिपूजा का काफी प्रचार था। उस समय उन प्रदेशों में जैनमंदिर भी विद्यमान थे, जिनके विनाश के अवशेष अनुसंधान करने पर आज भी मिल रहे हैं। आस्ट्रेलिया में श्रमण भगवान महावीर की मूर्ति, अमेरिका में ताम्रमय श्री सिद्धचक्र का गट्टा और मंगोलिया प्रान्त में अनेक भग्न मूर्तियों के अवशेष मिले हैं। पुरातन काल में मक्का-मदीना में भी जैन मंदिर थे, किन्तु जब वहाँ पूजा करने वाले कोई जैन नहीं रहे तब वे मूर्तियाँ भारत देश में सुप्रसिद्ध मधुमति (महुआ बंदर) में लाई गईं।

सर्वज्ञ विभु श्री जिनेश्वर तीर्थंकर भगवन्त-भाषित जैन सिद्धान्त आगम-शास्त्रों का यह कथन है कि इस विश्व में प्रत्येक आत्मा सत्ता या निश्चय नय से परमात्म स्वरूप है। लेकिन संसारी आत्मा की यह परिस्थिति ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों के अधीन है।

सिद्धां जैसो जीव है, जीव सो ही सिद्ध होय।
कर्म मैल को आंतरा, बूझे बिरला कोय॥

क्योंकि संसारी आत्मा पुद्गल के विषय में आसक्त होकर कर्मबंधन करता है। इसलिए वह कर्मसहित है और परमात्मा कर्मरहित विशुद्ध स्वरूप परमेश्वर है। परमात्मा और आत्मा में यही अन्तर है। आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए परमात्मा की उपासना-अर्चना-सेवा-भक्ति परम अवलम्बनभूत व हितकारी है। सेवा-भक्ति का यह उद्देश्य नहीं है कि उनसे हम किसी प्रकार के सांसारिक सुखों की याचना करें। उनके दर्शन और पूजन आदि का उद्देश्य तो उनके गुणों का कीर्तन, स्मरण, ध्यान आदि करना ही है। अर्थात् आत्मा में शुद्ध परमात्मस्वरूप का ध्यान करना स्मरण करना।

धर्माराधन में सद्देव, सद्गुरु और सद्धर्म का आलंबन परम आवश्यक है। इनको तत्त्वत्रय कहा गया है। सुदेव के दर्शन, पूजन, वंदन से आत्मा को सम्यक्त्व का लाभ प्राप्त होता है।

उपसर्गाः क्षयं यान्ति, छिद्यन्ते विघ्नवल्लयः।
मनः प्रसन्नतामेति, पूज्यमाने जिनेश्वरे॥

जिनेश्वर भगवान की पूजा करने से उपसर्ग नष्ट होते हैं, विघ्नों का नाश होता है और मन प्रसन्न होता है। कहा भी कहा है-

पूज्यपूजा दया दानं, तीर्थयात्रा जपस्तपः।
श्रुतं परोपकारं च, मर्त्यजन्मफलाष्टकम्॥

जिनेश्वर भगवान की पूजा, दया, दान, तीर्थयात्रा, जप, तप, श्रुत और परोपकार मनुष्यलोक में जन्म लेने के ये आठ फल हैं।

दर्शनाद् दुरितध्वंसी, वन्दनात् वांछितप्रदः।
पूजनात् पूजकः श्रीणां, जिनः साक्षात् सुरद्रुमः॥

जिनेश्वर भगवान के दर्शन करने से सब पाप नष्ट होते हैं, वन्दन से वांछित फल की प्राप्ति होती है, पूजन करने से पूजा करने वाले को लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, अतः जिनेश्वर भगवान तो साक्षात् कल्पवृक्ष ही हैं।

अनादिकाल से विश्व में जड़ और चेतन ये दो पदार्थ विशेष प्रसिद्ध हैं। संसार की समस्त अवस्थाओं में जीवात्मा का कार्य रूपी मूर्त पदार्थों को स्वीकार किए बिना नहीं चल सकता। प्रत्येक चेतन व्यक्ति को जड़ वस्तु का आलम्बन लेना ही पड़ता है, जैसे काल अरूपी है, किन्तु उसे जानने के लिए घड़ी रूपी यंत्र की आकृति को मानना ही पड़ता है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूर्तिपूजा का सर्वप्रथम विरोध करने वाले मुस्लिम धर्म के संस्थापक हजरत मुहम्मद सा. थे, किन्तु उनके अनुयायी अपनी मस्जिदों में पीरों की कब्रें बनाकर उन्हें पुष्प, धूप आदि से पूजते हैं। मोहर्रम के दिनों में ताजिये बनाकर रोना-पीटना करते हैं और यात्रा के लिए अपने धर्मतीर्थ मक्का-मदीना जाते हैं। मूर्तिपूजा को नहीं मानने वाले ईसाई भी सूली पर लटकती हुई ईसा-मसीह की मूर्ति और क्रास अपने गिरजाघरों में स्थापित कर उन्हें पूज्य भाव से देखते हैं। पारसी अग्नि को देवता मानते हैं और सूर्यदेव की भी पूजा करते हैं, यह मूर्तिपूजा का ही परिवर्तित रूप है। बौद्ध धर्म के मठ स्थान-स्थान पर देश-विदेश में विद्यमान हैं। इस धर्म के अनुयायी भी अपने मठों में गौतम बुद्ध की मूर्ति रखते हैं। आज भी गौतम बुद्ध की अनेक प्राचीन मूर्तियाँ उपलब्ध हैं। इससे सिद्ध होता है कि बौद्धमत में भी मूर्तिपूजा श्रद्धा का केन्द्र है। सिक्ख अपने को मूर्तिपूजा का विरोधी कहते हुए भी गुरुग्रन्थ साहब की पूजा करते हैं तथा पुष्प एवं अगरबत्ती भी चढ़ाते हैं। कबीर, नानक, रामचरण आदि मूर्तिपूजा-विरोधियों के अनुयायी भी अपने-अपने पूज्य पुरुषों की समाधियाँ बनाकर उनकी पूजा करते हैं। स्थानकवासी वर्ग भी अपने पूज्य पुरुषों की समाधि, चरण पादुका, फोटो इत्यादि बनाकर उनकी उपासना करते हैं। विश्व में कोई भी धर्म, मत, पन्थ, सम्प्रदाय, समाज, जाति तथा व्यक्ति मूर्तिपूजा से अलग नहीं रह सकता।

इसलिए मूर्तिपूजा आत्मकल्याण का एक महान् साधन है। संसारत्यागी साधु-साध्वियों के लिए भी श्री अरिहन्त परमात्मा की भावपूजा प्रतिदिन करना अत्यंत आवश्यक है तथा श्रावक-श्राविकाओं को द्रव्यपूजा और भावपूजा दोनों निरंतर करनी चाहिए।

प्रायः यह देखा जाता है कि शत्रु के चित्र को देखकर आत्मा में क्रोध आ जाता है और मित्र के चित्र को देखकर प्रेम पैदा हो जाता है, धार्मिक चित्र देखने से धर्म-भावना बढ़ती है और स्त्रियों के शृंगारिक चित्र देखने से कामवासना बढ़ती है। जब चित्रों का भी ऐसा प्रभाव है तो मूर्तियों का क्यों नहीं होगा?

सिनेमा के पर्दे पर चित्रों को आप जीवित व्यक्ति की दृष्टि से ही तो देखते हैं। वे चित्र जड़ होते हुए भी आपके हृदय पर जीवित-तुल्य प्रभाव डालते हैं, तब प्राण-प्रतिष्ठित की हुई मूर्ति वैसा क्यों नहीं कर सकती ? संसार की बहुत सी बातें चलचित्रों से सीखी जाती हैं। कुव्यसनों की ट्रेनिंग आधुनिक चलचित्रों से ही ली जा रही है, आज के छोटे-छोटे बच्चों में वह वृद्धि पा रही है। हिंसा, स्वेच्छाचार, कामुकता आदि भावनाएँ टेलीविजन और सिनेमा की ही देन हैं। जब चलचित्रों का ऐसा प्रभाव पड़ सकता है तब देवाधिदेव वीतराग प्रभु की मूर्ति के दर्शन आदि से और उनकी विधिपूर्वक की गई पूजा भक्ति एवं उपासना आदि से हम पवित्र नहीं बन सकते क्या? कर्मों का क्षय नहीं कर सकते क्या? परमात्मतत्त्व की प्राप्ति नहीं कर सकते क्या? अवश्य कर सकते हैं, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

मूर्ति को मात्र पत्थर मानने वालों का यह कहना कि 'यह पत्थर की मूर्ति हमें क्या देगी?' भारी भूल है। एक प्रभु-भक्त ने कहा है-

पत्थर भी सुन लेता है,
इसलिए हम पत्थर को पूजते हैं।
जिसके दिल में है पत्थर,
उसे पत्थर ही सूझते हैं।।

वे यह भूल जाते हैं कि जब माता-पिता के चित्र को देखकर तत्काल उनकी याद आ जाती है, तब भगवान की प्राण-प्रतिष्ठित मूर्ति को देखकर भगवान की याद क्यों नहीं आएगी? अवश्य ही आएगी और उनके गुण भी अवश्य याद आयेंगे।

वीतराग परमात्मा की उपासना वीतराग प्रभु को प्रसन्न करने के लिए नहीं, अपितु अपनी आत्मा को निर्मल बनाने के लिए की जाती है। 'चउवीसं पि जिनवरा तित्थयरा मे पसीयंतु' कहकर अन्त में 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' से सिद्ध पद की, मोक्ष की माँग की जाती है। अनादिकाल से आत्मा के साथ लगे हुए राग-द्वेष आदि कर्मों को दूर करने के लिए वीतराग परमात्मा की मूर्ति का आलंबन लेना परमावश्यक है।

यूँ तो विश्व में अनेक मूर्तियाँ हैं, किन्तु वीतराग प्रभु देवाधिदेव जिनेश्वर भगवान की मूर्तियों की विशिष्टता सबसे अलग है। जिनकी अंजनशलाका अर्थात् प्राण-प्रतिष्ठा जैन-मंत्रों एवं विधि-विधानपूर्वक हुई हो, ऐसी जिनमूर्ति देखते ही अन्तःकरण में वीतराग भाव की उत्पत्ति होती है। इसके आलंबन द्वारा आत्मा परमात्मा बनता है और मोक्ष के शाश्वत सुख को प्राप्त करता है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभु की मूर्ति के दर्शन-पूजन से संसारी आत्मा की पापवासना मन्द होती है और विषयकषाय का वेग कम होता है। उनके पूजन से सुदेव, सुगुरु और सुधर्म की श्रद्धा स्थिर रहती है तथा चित्त को शांति मिलती है। शारीरिक रोगादि कारणों से प्रभु की पूजा न हो सके तो भी भावना प्रभु-पूजा की रहती है। ऐसी परिस्थिति में कभी मृत्यु भी हो जाए तो भी आत्मा की शुभ गति होती है।

मूर्ति और मंदिर के निर्माण में भारतीय शिल्पकला को अत्यन्त ही पोषण मिला है और आज भी मिल रहा है। मन्दिर-निर्माण में लगाया हुआ धन धर्मदृष्टि से आत्मा को परमात्मा की ओर ले जाता है और व्यवहार-दृष्टि से शिल्पकला के रूप में आपके शुभ्र यश को विश्व में स्थायित्व प्रदान करता है ।

वीतराग प्रभु श्री जिनेश्वरदेव की भव्य मूर्ति के दर्शन-पूजन के समय विषय-विकार आदि को त्यागना होगा है, अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करना होता है, यह भी शीलधर्म का एक प्रकार है। मूर्ति के दर्शन-पूजन के समय अन्न-पान-खाद्य-स्वाद्य आदि चारों प्रकार के आहार का त्याग करना होता है, अतः यह भी एक प्रकार का तप है। दर्शन-पूजन के समय वीतराग प्रभु की स्तुति-स्तवन आदि द्वारा गुणगान करने से भावना की शुद्धि होती है।

जिनदर्शन एवं पूजन के समय वीतराग श्री अरिहन्त परमात्मा तथा श्री सिद्ध भगवान के गुणों का स्मरण करने से क्रमशः दर्शनमोहनीय और चरित्रमोहनीय कर्म का क्षय होता है। जीवदया की शुभ भावना से वेदनीय कर्म का क्षय होता है, शुभ अध्यवसाय की तीव्रता से आयुष्य-कर्म का क्षय होता है, नामस्मरण से नामकर्म का क्षय होता है, वंदन-पूजन से गोत्र-कर्म का क्षय होता है, भावपूर्वक दर्शन करने से दर्शनावरणीय-कर्म का क्षय होता है, तन-मन-धन की शक्ति और समय का सदुपयोग करने से अन्तराय-कर्म का क्षय होता है। इस प्रकार जिनदर्शन एवं जिनपूजन आठों कर्मों के क्षय करने का एक श्रेष्ठतम और सरलतम अनुपम साधन है। इसको अपनाने से पुण्य का बंध, आंशिक या सर्व कर्म की निर्जरा तथा अन्त में आत्मा को शाश्वत सुख रूप मोक्ष की प्राप्ति पर्यन्त समस्त कार्य एक साथ सिद्ध होते हैं।

जैसे संसार में विद्याध्ययन के लिए विद्यालय, चिकित्सा के लिए चिकित्सालय तथा ज्ञानार्जन के लिए पुस्तकालय की आवश्यकता है, वैसे ही जिनेश्वरदेव के वंदन पूजन-दर्शन-के लिए जिनालयों की भी अत्यंत आवश्यकता है। आत्मा के आत्मकल्याण के कार्य में जिनमंदिर, जैन उपाश्रय, जैन तीर्थस्थल देवालय इत्यादि श्रेष्ठ साधन हैं।

श्री जिनमंदिर संसार के त्रिविध ताप आधि-व्याधि, उपाधि से संतप्त आत्माओं के लिए विश्रामालय या आश्रयस्थान हैं।

आचार्य भगवन्त श्रीमद्हरिभद्रसूरीश्वरजी महाराज ने कहा है --

चैत्यवन्दनतः सम्यक् शुभो भावः प्रजायते।
तस्मात् कर्मक्षयः सर्वस्तत् कल्याणमश्नुते।।

चैत्य अर्थात् जिनमूर्ति की सम्यक् प्रकार से वंदना करने से प्रकृष्ट शुभ भाव पैदा होते हैं। शुभ भावों से समस्त कर्मों का क्षय होता है, पश्चात् पूर्ण कल्याण की प्राप्ति होती है।

''अर्हतां प्रतिमाः प्रशस्तसमाधिचित्तोत्पादकत्वात् चैतन्यानि भण्यन्ते।''

चित्त अर्थात् अन्तःकरण का भाव या अन्तःकरण की क्रिया, उसका नाम चैत्य है। श्री अरिहन्तों की मूर्ति प्रतिमाएँ अन्तःकरण की प्रशस्त समाधि को उत्पन्न करने वाली होने से चैत्य कहलाती हैं।

मूर्तिपूजा के शास्त्र-सम्मत होने के कई प्रमाण उपलब्ध हैं। श्री उववाई सूत्र में 'बहवे अरिहंत चेइयाइं' पाठ आता है। वहाँ पर भी बहुत सी अरिहन्त भगवान की मूर्तियाँ और मंदिर ऐसा अर्थ किया गया है। व्यवहार सूत्र की चूलिका में श्री भद्रबाहु स्वामीजी ने 'द्रव्यलिंगी चैत्य स्थापना करने लग जाएँगे' ऐसा कहा है। वहाँ पर भी मूर्ति की स्थापना करने लग जाएँगे ऐसा अर्थ किया गया है। श्री आवश्यक सूत्र के पाँचवें कायोत्सर्ग नामक अध्ययन में 'अरिहंत चेइयाणं' शब्द का अर्थ जिनप्रतिमा किया है। भगवती सूत्र में निम्न पाठ है-

"नन्नत्थ अरिहंते वा अरिहंत चेइयाणि वा भावी अप्पणो अणगारस्स वाणिस्साव उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो।"

असुरकुमार देव सौधर्म देवलोक में जाने तक तीन की शरण लेते हैं- अरिहंत भगवान की, चैत्य यानी जिन प्रतिमा की और साधु की।

जिनमूर्ति क्या-क्या करती है? इसका वर्णन एक भक्त अपनी प्रार्थना में करता है, हे प्रभो! आपकी मूर्ति मोह रूपी दावानल को शान्त करने के लिए मेघवृष्टि के समान है। आपकी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिमा समता-प्रवाह की प्रदाता पवित्र सरिता के सदृश है। हे प्रभो! आपकी प्रतिमा भव्य जीवों को संयम द्वारा मोक्षनगर में ले जाने वाला अंतरिक्षयान है। हे प्रभो! आपकी मूर्ति आराधक आत्मा के कर्मों की निर्जरा करती है। चैत्यवंदन और स्तुति-स्तवन आराधक आत्मा के ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय करते हैं। आपकी मूर्ति के समक्ष श्री अरिहन्त एवं श्री सिद्ध भगवान के गुणों का स्मरण मात्र करने से आराधक के दर्शन-मोहनीय और चारित्र-मोहनीय कर्मों का क्षय होता है। आपकी मूर्ति राग-द्वेष रूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाली है। हे प्रभो! आपकी मूर्ति का भावपूर्वक दर्शन-पूजन करने वाले भव्य जीवों को मोक्ष की प्राप्ति होती है।

अशुभ आलम्बन से आत्मा के भावों में अशुद्धता आती है और शुभ आलम्बन से शुद्धता आती है। इसीलिए जहाँ साधु महाराज ठहरते हैं, उस स्थान पर कामवासना-उत्तेजक कोई स्त्री का चित्र भी हो तो वहाँ साधु को नहीं ठहरना चाहिए, ऐसा दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है-

चित्तभित्तं न णिज्जाए नारिं वा सुअलंकिअं।
भक्खरमिव दट्ठूणं दिट्ठिं पडिसमाहरे।।

जहाँ दीवार पर भी सुअलंकृत स्त्री का चित्र हो, वहाँ साधु को नहीं ठहरना चाहिए। यदि उस चित्र पर दृष्टि पड़ भी जाए तो दृष्टि को तुरंत दूसरी तरफ घुमा लेना चाहिए जैसे दोपहर के समय चमचमाते सूर्य की तरफ दृष्टि जाते ही उसे घुमा लेते हैं।

दशवैकालिक सूत्र की इस गाथा का लोकभाषा में अनुवाद करने वाले महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज ने अपने स्तवन में कहा है -

दशवैकालिक दूषण दाख्युं, नारी चित्र ने ठामे।
तो किम जिन प्रतिमा देखी ने, गुण नवी होय परिणामे।।

दीवार पर सुअलंकृत सुशोभित नारी का चित्र देखना भी जब दोष उत्पन्न कर सकता है, जब जिनप्रतिमा को देखकर गुण उत्पन्न क्यों नहीं हो सकते? जब अश्लील चित्र आदि से मन के परिणाम अशुभ हो सकते हैं, तब वीतराग परमात्मा की मूर्ति के दर्शन, वंदन एवं पूजन से शुभ भाव क्यों नहीं उत्पन्न हो सकते? कहना ही पड़ेगा कि शुभ आलंबन-निमित्त से शुभ भाव अवश्य प्रकट हो सकते हैं। इसमें थोड़ा भी संदेह नहीं है। मूर्ति भले ही पत्थर की हो या अन्य धातु की हो, किन्तु अपने अन्तःकरण का उच्च भाव पत्थर इत्यादि की मूर्ति में भी परमात्मा का दर्शन कराता है। इससे उसको अपूर्व लाभ होता है। आत्मिक विकास का सारा आधार अन्तःकरण के शुभ भाव पर है और प्रशस्त आलम्बन के बिना शुभ भाव प्रकट नहीं हो सकते।

देवाधिदेव श्री जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा के अनुपम दर्शन-अर्चन आदि से दर्शनविशुद्धि अवश्य होती है। साथ ही साथ उनके गुणों का चिंतन-मनन भी आसानी से होता है। आत्मा साकार उपासना द्वारा ही निराकार उपासना की अधिकारिणी होती है। अर्थात् आत्मा सगुण उपासना के आलंबन से ही निर्गुण-उपासना की उत्तम भूमिका तक पहुँचती है। अपने इष्टदेव देवाधिदेव जिनेश्वर परमात्मा की मूर्ति का दर्शन-वंदन और पूजन करना ही सगुण उपासना है। यूँ करते-करते ही अन्त में आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप में लवलीन होती है। जिस समय ध्याता, ध्येय और ध्यान ये तीनों एकरूप हो जाते हैं, ध्याता अपनी आत्मा है, ध्यान परमात्मा का स्वरूप और ध्येय परमात्मपद मोक्षपद प्राप्त करना है। अर्थात् ध्याता, ध्येय और ध्यान इन तीनों का एकाकार हो जाना ही मोक्षपद की प्राप्ति है।

आचार्य श्रीमद् रत्नशेखर सूरीश्वरजी महाराज विरचित सिरि सिरिवाल कहा (श्री श्रीपाल-कथा) में कहा गया है कि "उज्जैन नगरी में श्री केसरियानाथ (श्री ऋषभदेव) की मूर्ति के सम्मुख श्री सिद्धचक्र यन्त्र के स्नात्रजल (प्रक्षालन जल) से श्रीपाल राजा तथा सात सौ कोढ़ियों का अठारह प्रकार का कोढ़रोग सर्वथा दूर हो गया और इन सभी के शरीर कंचन के समान शुद्ध हो गए।" श्री केसरियानाथजी की यही प्राचीन भव्य मूर्ति आज भी उदयपुर के निकट श्री केसरियाजी तीर्थ में विद्यमान है।

जब श्रीकृष्ण और जरासंध का युद्ध हुआ तब जरासंध ने कृष्ण की सेना पर जरा विद्या का प्रयोग किया जिससे कृष्ण की सारी सेना वृद्ध हो गई तब श्री नेमिकुमार की प्रेरणा से श्रीकृष्ण ने तेले का तप किया। तेले के प्रभाव से धरणेंद्र ने आकर श्री पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति दी, जिसे पूर्व चौबीसी के समय दामोदर तीर्थंकर के श्रावक आषाढ़ी ने बनवाया था। इस मूर्ति के स्नात्रजल से जरासंध की जराविद्या दूर हो गई और संग्राम में कृष्ण की विजय हुई। तब हर्ष विभोर होकर वासुदेव कृष्ण ने अपने मुख से अपना शंख बजाया और तभी से यह जिनमूर्ति श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुई।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यक निर्युक्ति नामक ग्रन्थ में जिनमूर्ति के भावपूर्वक दर्शन करने के संबंध में कहा गया है कि श्रमण भगवान महावीर प्रभु ने गौतमस्वामी महाराज की शंका का निवारण करने के लिए कहा कि "जो भव्यात्मा अपनी आत्मलब्धि से श्री अष्टापद तीर्थ पर चढ़कर श्री भरत चक्रवर्ती द्वारा बनवाई गई और वहाँ स्थापित की हुई जिनमूर्तियों का भावोल्लासपूर्वक दर्शन करेगा, वह इसी भव में अवश्य मोक्ष पायेगा। यह सुनकर इस बात का निर्णय करने के लिए गौतम स्वामी गणधर स्वयं स्वात्मलब्धि द्वारा अष्टापद तीर्थ पर चढ़े तथा वे 'जग चिन्तामणि' नूतन रचना द्वारा जिनेश्वर देवों की चैत्यवन्दना करके और यात्रा करके उसी भव में सकल कर्मों का क्षय करके मुक्त हो गए।

स्नात्रपूजा श्री जिनेश्वरदेव का अभिषेक है। तीर्थंकरों के पाँचों कल्याणक इन्द्रादि देव मेरु पर्वत पर स्नात्रपूजा से (जिनेश्वर के अभिषेक द्वारा) करते हैं। स्नात्रपूजा से विचारों की शुद्धि होती है।

श्री सूत्रकृतांग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध में छठे अध्ययन की वृत्ति-टीका में कहा गया है कि मगध देश के सम्राट् श्रेणिक महाराज के सुपुत्र श्री अभयकुमार मंत्री द्वारा भेजी गई श्री ऋषभदेव भगवान की मूर्ति के दर्शन से ही अनार्यदेश में उत्पन्न हुए श्री आर्द्रकुमार ने जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त किया और वे आर्य देश में आकर वैराग्य दशा में लीन हुए।

कलिकालसर्वज्ञ श्रीमद् हेमचंद्र सूरीश्वरजी महाराज ने योगशास्त्र में कहा है कि श्री श्रेणिक महाराज ने श्री जिनेश्वर देव की प्रतिमा की सम्यक् आराधना से तीर्थंकर गोत्र बाँधा था।

श्री आवश्यक वृत्ति में ऐसा वर्णन है कि श्री जिनेश्वर भगवान की स्नात्रपूजा पुण्य का अनुबंध कराने वाली होती है तथा निर्जरा रूप फल भी देने वाली होती है।

पुरुषादानीय श्री स्थंभन पार्श्वनाथ भगवान की भव्य मूर्ति के स्नात्र जल (प्रक्षाल-जल) से नवांगी टीकाकार श्री अभयदेव सूरीश्वरजी महाराज का गलण कोढ़ का रोग दूर हो गया।

राजा भोज ने चमत्कार की दृष्टि से जैनाचार्य श्रीमान् तुंगाचार्य सूरीश्वरजी महाराज के शरीर पर लोहे की ४४ बेड़ियाँ डालीं। श्री भक्तामर स्तोत्र के ४४ श्लोकों की रचना द्वारा भगवान आदिनाथ की स्तुति और उद्घोषणा से बेंड़ियाँ टूट गईं जिससे जिनशासन की प्रभावना में अनुपम वृद्धि हुई। इस भक्तामर स्तोत्र में बिम्ब शब्द का बहुप्रयोग है।

वीतराग प्रभु की द्रव्यपूजा और भावपूजा करने से भवभ्रमण सर्वथा दूर होता है, इसके समर्थन में चौदह पूर्वधर श्री भद्रबाहु स्वामीजी महाराज ने श्री आवश्यक निर्युक्ति में कहा है-

अकसिणपवत्तमाणं, विरयाविरयाण एस खंलु जुत्तो।
संसारपयणु करणे, दव्वत्थए कूवदिट्ठंतो।।

जैसा कुआ खोदते समय तो बहुत परिश्रम होता है और बहुत प्यास लगती है, किन्तु कुए में पानी निकल जाने पर सदैव के लिए प्यास बुझाने का प्रबंध हो जाता है, वैसे ही भगवान की द्रव्यपूजा से भवभ्रमण समाप्त हो जाता है और मोक्षसुख की प्यास भी शान्त हो जाती है।

जिनमूर्तिपूजा महान् फलदायक शुभ क्रिया है। सुपात्रदान, स्वामिवात्सल्य और धर्मस्थान के निर्माण, जिनप्रतिमा-पूजन इत्यादि शुभ प्रवृत्तियों में आरम्भ-समारम्भ का सामान्य दोष होने पर भी आत्मा के अध्यवसाय शुभ रहते हैं। अतः वहाँ पुण्यानुबन्धी पुण्य का बन्ध होता है, साथ ही कर्मनिर्जरा का भी जीव को अपूर्व लाभ मिलता है।

'श्री जिनेश्वर भगवान की यथाशक्ति सेवा-भक्ति करना मेरा परम कर्त्तव्य है' प्रभु की प्रशान्त मुद्रा को देखकर ऐसी शुभ भावना अन्तःकरण में उत्पन्न होती है कि जैसे मेरू पर्वत पर ले जाकर इन्द्र आदि ने प्रभु का अभिषेक किया, स्नात्रपूजा की, वैसे ही मैं भी उत्तम अभिषेक इत्यादि का अनुपम लाभ लेकर भगवान की स्नात्रपूजा करूँ, अष्टप्रकारी पूजा करूँ।

कुछ लोग यह शंका करते हैं कि जल, चंदन, पुष्प, धूप, दीप, फल इत्यादि से प्रभु की पूजा करने में हिंसा है, क्योंकि ये सब सचित्त द्रव्य हैं। हिंसा में धर्म नहीं हो सकता, इसलिए मूर्तिपूजा को उचित नहीं कहा जा सकता।

इसका समाधान यह है कि संसारी प्राणियों को इस प्रकार की हिंसा तो कदम-कदम पर लगती है, इसीलिए ज्ञानी महापुरुषों ने कहा है कि विषय और कषाय आदि की प्रवृत्ति करते हुए अन्य जीवों को दुःखहानि हो, उसी को हिंसा कहते हैं। हिंसा दो प्रकार की है। द्रव्यहिंसा और भावहिंसा, द्रव्यहिंसा में होने वाली स्थावर जीवों की हिंसा को भावहिंसा नहीं कह सकते, क्योंकि भगवान की पूजा से आत्मगुणों की वृद्धि रूप भावदया होती है और भावदया को तो मोक्ष का कारण कहा गया है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनप्रतिमा की स्नात्र-प्रक्षालन पूजा भी जन्म दीक्षानिर्वाण कल्याणकों के निमित्त ही कराई जाती है, क्योंकि जिनेश्वर भगवान को जल से ही स्नान कराने का विधान है। आगमों में भी इस बात का स्पष्ट उल्लेख है। नियमानुसार जल को छानकर, उस सीमित जल में दूध इत्यादि द्रव्यों को मिलाकर पंचामृत बना लेने से वह अचित्त हो जाता है। उस पंचामृत से जिन मूर्ति को स्नान कराने के बाद थोड़े से सादे जल से स्नान कराकर स्वच्छ वस्त्र से पौंछकर मूर्ति को एकदम निर्मल किया जाता है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org